

पाकिस्तान का सफरनामा-10

अनन्तर/ जनसत्ता/१८ जून, २००६

देशज सभ्यता का सूर्यास्त

ओम थानवी

मूअनजो-दड़ो के टीले पर बने भव्य बौद्ध स्तूप की छाया अभी लंबी नहीं हुई है। शाम ढलने में वक्त है। पर ध्यान दिलाया गया है कि अभी हमें लाड़काणा जाना है। वहां से टैक्सी बदल कर सक्खर। सक्खर के जुड़वां कस्बे रोहड़ी से आधी रात को लाहौर निकलने वाली ट्रेन पकड़नी है।

‘सड़क का रास्ता रात में महफूज नहीं है’, हैदरबख्श याद दिलाते हैं। गुलाब भाई तर्दीद नहीं करते। सबकी फिक्र माकूल है। डाकुओं का डर कोरा हौवा नहीं। राहगीरों के साथ वारदातें यहां आए रोज होती हैं।

मन में अजीब हलचल है। क्या कुछ देर रुक नहीं सकते! बस थोड़ी देर और। टीले पर एक बार फिर चढ़ें और स्तूप की मुंडेर से सूर्यास्त देखें। ढलता हुआ वह आदिम सूरज जो हजारों साल पहले आबाद मूअनजो-दड़ो की गहमागहमी में किसी शाम ठीक यहीं, ठीक ऐसे ही डूबा होगा! तहजीबें बनती और गुरूब होती हैं; लेकिन सूरज-चांद के उदय-अस्त ही हैं जो जस के तस रहते हैं। अक्षुण्ण, चिरंतन। सजीव और पवित्र।

लेकिन लौटना होगा।

हजारों अधूरी ख्वाहिशों में एक मुखतसर को और जमा कर हमने मूअनजो-दड़ो को विदा कह दिया। इंशाअल्लाह, फिर आएंगे। दिया मन को दिलासा। पांच पलटे और आगे बढ़े। गुलाब बोले, मैं लाड़काणा तक आपके साथ चलूंगा। वहां से दूसरी टैक्सी दिलवा कर लौट आऊंगा। जरूर चलें। जुदाई का वक्त है, पर मन हलका है। एक गहरा आत्मतोष, एक तसल्ली। अपनी आंख से मूअनजो-दड़ो देखा है। सभ्यताओं की सभ्यता। संस्कृति का तीर्थ। कला का आदि-पर्व।

लाड़काणा तक का सफर चुप्पी में गुजरा। जैसे हम कदीम खण्डहरों के गड्डुमड्डु मंजर समेट कर मन में तस्तीबवार कर रहे हों। खयालों का सिलसिला कभी दृश्य के भीतर जाता, कभी बाहर। अनुभव हुआ कि सिंधु घाटी सभ्यता को लेकर खुदाई कम हुई है, विवादों की जड़ें ज्यादा खोदी गई हैं। यह बहस ज्यादा मायने नहीं रखती कि हड़प्पाई बाशिंदे आर्य थे या अनार्य; वेद पहले लिखे गए या बाद में। वेद भले बाद में लिखे गए हों या लोग ‘बाहर’ से आए हों, लेकिन यह मानना मुश्किल होगा कि हड़प्पा सभ्यता- जिसका देशज होना स्थापित है- लुप्त हुई तो खत्म भी हो गई। खेती, पशुपालन और नगर नियोजन में तो सभ्यता एक विराट क्रांति थी ही। लेकिन इसके साथ सभ्यता के वे चिह्न भी अहम हैं जिन्होंने हमें कुदरत और अपने पर्यावरण से तालमेल की एक अनूठी जीवन-शैली दी। कुछ विद्वानों ने शिवलिंग, पशुपति, हवनकुण्ड, स्वस्तिक और कमण्डल जैसे प्रतीकों के जरिए हड़प्पा सभ्यता को हिंदू सभ्यता साबित करने का बहुत जतन किया है। लेकिन इसमें भावना का पुट ज्यादा, तर्क कम है।

निश्चय ही धीरे-धीरे स्वरूप लेने वाले सनातन जीवन-दृष्टि के कई पहलुओं में हड़प्पा सभ्यता की छाप देखी जा सकती है। मसलन, सामूहिक स्नान कुण्ड की मौजूदगी। या मुहरों पर ‘महायोगी’ की छवि। जंगली पशुओं से घिरे महापुरुष आदि-शिव हों न हों, उसे योग का आसन जरूर माना जा सकता है। आज संसार मानता है कि योग भारत की मौलिक देन है। दिलचस्प बात है कि व्यक्ति को भीतर की तरफ मोड़ने वाले योग का पाठ समृद्ध और नागर मूअनजो-दड़ो से गया। छोड़ने का मतलब तभी है जब छोड़ने के लिए आपके पास कुछ हो। यह त्याग है। आंख होने के अहंकार का विलय कर आंखें मूंदना और भीतर की आंख से खुद को और दुनिया को देखना। शब्दों के पार मौन में अर्थ ढूंढना। दो पांच से दुनिया नापने की महत्वाकांक्षा के बरक्स पालथी मार कर बैठना और काल की दूरी नापना। हाथ पर हाथ धर कर बैठना हमेशा निरर्थक नहीं होता। समृद्धि और भव्यता के बीच मूअनजो-दड़ो का यह गहरा संदेश है। जरा गौर करें कि मूअनजो-दड़ो की दोनों जगत्-विख्यात छवियों में- जिनमें एक को ‘प्रीस्ट-किंग’ ठहराया गया है, दूसरी को ‘नर्तकी’- आंखें खुली नहीं हैं? बंद या अध-मुंदी आंखों में अपनी गरिमा का वास है। यह अकारण नहीं कि मूअनजो-दड़ो की यह भंगिमा कई सदियों बाद फिर हमारे देश में ही बुद्ध और महावीर की ध्यान-मुद्रा में दिखलाई दी।

अच्छा होता मूअनजो-दड़ो की लिपि पढ़ी जा सकती। लेकिन उसके कला-रूपों की भाषा और उसके संदेश बगैर लिपि के भी पढ़े जा सकते हैं। सिंधु घाटी की मुहरों में मनचाहे श्लोक ढूंढने से बेहतर है सभ्यता के दर्शन और उसकी उदात्त कला-दृष्टि को पहचानना। हड़प्पा-मूअनजो-दड़ो के चित्रों के बिम्ब, चेहरों के भाव और आकृतियों के संयोजन पढ़ने की अहमियत इबारतें पढ़ने से कम नहीं मानी जाएगी।

शांति, अहं का विलय, कला के लघु-रूप और प्रकृति का सान्निध्य। लेकिन सिर्फ यही सिंधु सभ्यता से आम भारतीय का रिश्ता नहीं जोड़े रखते। सच्चाई यह है कि हम आज भी ईंटें उसी आकार में वैसे ही सेंक कर बरतते हैं जैसे पांच हजार साल पहले बरती गईं। खेत, हल, सिंचाई, फसलें, बैलगाड़ियां, गहने, घर, कुएं, जल-निकास और कला व शिल्प की अनेक परंपराएं आज भी वैसी ही चली आती हैं, जैसी तब थीं। मूअनजो-दड़ो की नर्तकी के बाएं हाथ में कलाई से कंधे तक जो 'चूड़ा' है, वह भारत और पाकिस्तान के थार में औरतों के हाथों पर आज भी इसी रूप में देखा जा सकता है। सही है कि ये सभ्यता के उस उत्कर्ष के चंद्र अवशेष हैं। लेकिन संस्कृतियां इसी तरह कुछ छोड़ते और कुछ जोड़ते हुए आगे बढ़ती हैं। किसी ने ठीक कहा है कि अतीत कभी मरता नहीं है।

सही मायनों में हड़प्पा सभ्यता किसी कर्मकाण्ड की स्थापना नहीं, एक दर्शन का सूत्रपात थी। हथियारों से दूर एक शांतिप्रिय सभ्यता, 'योग' के आत्मानुशासन में अंतर्मुखी चेतना का संदेश देती हुई, नृशास्त्री पोसेल के शब्दों में संस्कृति की शकल में एक ऐसा विश्वास जो सभ्यता का मानवीय चेहरा पेश करता है। हम इसे भारतीय कह सकते हैं। लेकिन अब पाकिस्तान-बांग्लादेश के बंटवारे के बाद भारतीयता के लिए भी शायद कोई नया नाम ढूंढना पड़े, जो उन्हें भी मंजूर हो! बहरहाल, उस परंपरा को भारतीय उप-महाद्वीप में एक साझा विरासत के रूप में साफ तौर पर पहचाना जा सकता है। जैसा कि सिंध के एक नेता ने कहा था कि हम चंद्र दशकों से पाकिस्तानी हैं, कुछ सदियों से मुसलमान, मगर हजारों साल से हम सिंधी हैं। हमारी विविधता में यह एक केंद्रीय सूत्र है। इस परंपरा का जीता-जागता प्रतीक सिंधु घाटी की सभ्यता है। इस परंपरा को वैदिक सभ्यता ने समृद्ध किया है। इस्लाम ने भी।

'अज्ञेय' की दो-पंक्तियों की एक कविता है- 'सांझ-सबेरे':

रोज सबेरे मैं थोड़ा-सा अतीत में जी लेता हूँ -
क्योंकि रोज शाम को मैं थोड़ा-सा भविष्य में मर जाता हूँ।

मूअनजो-दड़ो के अतीत में मैं कई जिंदगियां एक साथ जीकर आया हूँ।

लाड़काणा में गुलाब पीरजादा ने हमें सक्खर के लिए अलग टैक्सी करवा दी। पाकिस्तान में टैक्सियां अच्छी हैं। सब विदेशी कारें। मुल्क में अपनी कार अभी पिछले साल ही कराची में बननी शुरू हुई है, पर महंगी होने की वजह से खास लोकप्रिय नहीं है।

सिंधी समुदाय में विनय बहुत है। टैक्सी वाले ने हमें अपनी तरफ से शहर की बहुत जानकारी दी। एक सुनसान मंदिर के सामने से गुजरे तो बोला, शिवजी महाराज का है, दरसन करेंगे? नहीं। वहां भी नहीं करते, यहां क्या करेंगे! अरुण को पूछा। बोले, मूअनजो-दड़ो में बताया गया था कि लाड़काणा के अमरूद बड़ी महक वाले होते हैं! अमरूद पीछे छूट गए साईं, टैक्सी वाले ने प्यार से कहा, वे आपको सक्खर में मिल जाएंगे। 'अभी डेढ़ घंटे में पहुंच जाएंगे। हम और देर करेंगे साईं, तो मसला (समस्या) हो जाएगा। मुझे वापस भी आना है।'

उसने इतने भोलेपन से कहा कि कोई अमरूद क्या, मुल्क भी छोड़ आता। 'साईं' के संबोधन में ही जादू है। यों यह जनाब या मोहतरम के हममानी के रूप में इस्तेमाल होता है। पर, इसके बरताव में एक सोंधी-सी आत्मीयता है। ज्यादा आदर भी है। जैसे बड़े भाई को सिंधी में सिर्फ भाऊ कहते हैं। पर उम्र में बहुत फासला हो तो कहेंगे साईं। दामाद को साईं। गुरु को साईं। हर मोअज्जिज शख्स को साईं। देवता भी साईं: साईं झूलेलाल। और मेहमान भी। साईं का स्वामी से सीधा साम्य है। हिंदू हों चाहे मुसलमान, सिंध में साईं सबका अजीज संबोधन है। आदर में साईं से ऊंचा और विविध छटाओं वाला शब्द शायद ही किसी और जुबान में हो।

अंधेरा छाने लगा था। सक्खर का रास्ता कराची के रास्ते पर चमकते ट्रकों से ज्यादा जगमग था। लेकिन लगातार नहीं। कभी-कभी देर तक चारों तरफ अंधेरा छाया रहता जिसे गाड़ी की हैडलाइट मामूली फासले तक चीरे रखती थी। कोई प्रत्यक्ष भय नहीं था, पर जितने हादसे सुन आए थे उनका खयाल कर सब थोड़ा-बहुत सहमे हुए जरूर थे। न बात चलती थी, न चीत। बस सड़क पर आंखें गड़ाए थे, जैसे रोशनी के पार अंधेरे को घूर कर

भेद लेंगे।

कितना अजीब अहसास था: शांति और योग की दुनिया से अभिभूत होकर लौट रहे हैं और सड़क पर बंदूक का खौफ है! जैसे आसमान से गिरे हों। लाड़काणा के किसी बाजार में तो रुके नहीं थे। सक्खर पहुंच कर महसूस हुआ कि समस्या कितनी विकट है। देखा कि फ्रेयर बाजार और स्टेशन रोड पर चार-छह दुकानों के बीच एक दुकान हथियारों की है। मैंने हथियारों की इतनी दुकानें पहले कभी नहीं देखीं। बल्कि दिल्ली या मुंबई के बाजारों को ठीक से याद करते हुए भी जेहन में हथियारों की किसी दुकान की एक झलक तक नहीं उभरी।

और इस सब पर यह इल्म कि सूफी संतों की परम धरा पर खड़े हैं। पीछे मस्त कलंदर का सेव्हण है और शाह लतीफ का भिट्ट शाह भी। यहां सक्खर के पास सचल सरमस्त का धाम दरजा है और दूसरी तरफ शिकारपुर, जहां पर्चियों पर बंद लिख-लिखकर मटके में छोड़ देने वाले चैनराय सामी हुए!

मगर बात इतनी ही नहीं है। सिंध की पीर-फकीरों की इस धरती ने हिंदू-मुसलिम दुराव का ऐसा दौर भी देखा जिसका अंदाजा उस सूफी काव्य का कोई बंद सुनते हुए लगाना आज भी दुष्कर होगा, जिसे अल्लन या सोहराब फकीर और माई भागी जैसे लोक गायक सीधे तार सप्तक में गाते हैं। सक्खर ने उस दौर का खूनी मंजर देखा। लेकिन यह बंटवारे के वक्त नहीं हुआ। कराची में- और बाद में रास्ते में भी- सही बताया गया था कि बंटवारे के वक्त सिंध में खूनी दंगे नहीं हुए, जैसे कि पंजाब में हुए। पर सक्खर पहुंच कर लोगों से जो बात हुई, उससे लगा कि बंटवारे के बहुत पहले दोनों समुदायों के रिश्तों में जो गांठ लगी वह आज तक खुल नहीं सकी है। भारत की राजनीति तक में उसका असर साफ पहचाना जा सकता है।

कराची और हैदराबाद के बाद सक्खर सिंध का तीसरा बड़ा शहर है। यह सिंध के बीचोबीच पड़ता है। सक्खर जिले की सीमा राजस्थान के जैसलमेर जिले से सटी है। देखा जाय तो हैदराबाद-कराची सक्खर से दूर हैं, जैसलमेर करीब! शायद इसीलिए जैसलमेर में 'मूमल-महेंद्र' के नाम से मशहूर प्रेम-कथा यहां शाह लतीफ की बतों में 'मूमल-रणो' के नाम से घर-घर में सुनी जाती है। हैदराबाद की तरह सक्खर भी सिंधु के तट पर बसा है, जबकि बाकी शहर और गांव-कस्बे सिंधु से अच्छी-खासी दूरी रखकर आबाद हुए। बाढ़ और दलदल सिंध की प्रागैतिहासिक दृष्टत हैं। पर इनके सामने सक्खर अकेले डटा हुआ नहीं है। सिंधु के उस पार पूर्वी तट पर रोहड़ी बसा है। कराची-लाहौर की रेलपट्टी वहीं से गुजरती है।

सिंधु नदी के बीच में प्रसिद्ध साधु बेला (सिंधी में साधु बेलो) मंदिर है। यह बखर नाम के एक टापू पर बना है। सिंधी-हिंदू बंटवारे के दौरान जब भारत चले आए तो मुंबई में महालक्ष्मी में साधु बेला नाम से ही एक नया मंदिर बनवाया। शायद यह उनकी स्मृति को सिंध से जोड़े रखता हो। बताते हैं साधु बेला मंदिर में गुरु नानक ने अपनी सक्खर यात्रा के दौरान परिक्रमा की थी। कहना न होगा सिंधी-हिंदू गुरु नानक को बहुत मानते हैं और न केवल सिंध में, बल्कि भारत में भी सिंधी बस्तियों में बहुत-से गुरुद्वारे स्थापित हैं।

सक्खर और रोहड़ी को एक विशाल लांसडाउन पुल- या अय्यूब पुल- जोड़ता है, जो हावड़ा पुल की याद दिलाता है। सिंधु पर एक और पुल है। यह असल में एक बांध है जो १९३२ में बना। इसे अब सक्खर पुल कहते हैं, पर इसका पुराना नाम लॉयड बैराज है। यह नाम बंबई प्रेसीडेंसी के गवर्नर जॉर्ज लॉयड के नाम पर पड़ा। सिंध तब प्रेसीडेंसी के ही अधीन था। असल में हिमालय से सागर के बीच सक्खर ही है जहां सिंधु का पाट इतना संकरा हो जाता है। इसके बावजूद बैराज की लंबाई पांच हजार फुट है।

बैराज जब बना, तब दुनिया में सबसे बड़ा माना गया था। इसकी सात नहरों में कुछ तो स्वेज नहर से बड़ी हैं। इन नहरों के पानी से चालीस हजार वर्ग-किलोमीटर क्षेत्र में सिंचाई हो सकती है। माना जाता है कि रेगिस्तान में बंजर पड़े बड़े इलाके को सक्खर बैराज ने सिंधु के पानी के इस्तेमाल से जीवन-दान दिया। इससे सिंचाई के लिए पानी बारहों महीने मिलने लगा। पहले जहां नदी या कुओं के आसपास खेती हो पाती थी, बांध और उसकी नहरों ने बंजर भूमि को सरसब्ज कर दिया। इतना कि खी से खरीफ की पैदावार ज्यादा होने लगी।

जाहिर है, सिंध की अर्थव्यवस्था यानी खेती और कृषि उत्पादनों के व्यापार में सिंधु बुनियादी सहारा रही है। सिंध और पंजाब के सूबे मिलकर पाकिस्तान का एक-तिहाई हो जाते हैं। मुल्क की ज्यादातर आबादी और पैदावार यहीं पर केंद्रित है। बारिश भले कम हो, सिंध और उसकी सहायक नदियां- रावी, सतलुज, झेलम और चेनाब- के दोआबे और नहरें खूब फसल देती हैं।

ऐसे में यहां के हिंदू शरणार्थी होकर सिंध क्यों छोड़ गए? या बड़ी तादाद में हिंदू सिंध में क्यों रह गए? यह समझने

के लिए हमने पहले शहर के घण्टाघर चौक पर 'डॉन' समूह के एजेंट और हमारे मेजबान महबूब अली से गुफ्तगू की। उनके पत्रकार मित्र शाहिद अली से मिले। फिर अपना असबाब उनके सुपर्द कर शाही बाजार की तरफ चल दिए। लगा कि पुराने भोपाल के जुमेराती बाजार में पहुंच गए हैं। कोई अलग चीज थी तो हर तरफ दुकानों के बाहर टंगे अजरक या उससे मिलते-जुलते छापो के लाल-धूसर वस्त्र। और टेलों पर खजूर, जो यहां बहुत होता है।

लोकसंगीत की तलाश में एक दुकान पर चढ़े। वे कोई 'रामचंदानी' थे। अल्लन फकीर की सीडी कन्हैयालाल गोपालदास केवलरमाणी के 'सौजन्य से' निकली है। उनसे और कुछ दूसरे लोगों से बातचीत में लगा कि एक बेचैनी उन लोगों में तारी है। यह अपनी बिरादरी से बिछड़ने का रंजो-गम कम, पाकिस्तान के हालात की बेचैनी ज्यादा है। अर्थव्यवस्था बेकाबू है। जम्हूरियत गायब है। रह-रह कर हुकूमत पर फौजी कब्जा कायम हो जाता है। इसके बीच बड़ी टीस यह है कि आईन (संविधान) में प्रावधान नहीं है, इसलिए बराबरी के हकूक नामुमकिन-सी चीज हैं। तालीम में इस पर बहुत जोर रहता है कि पाकिस्तान मुसलमानों का है। साफ संदेश मिलता है कि पाकिस्तानी होने का मतलब भारत और हिंदुओं के खिलाफ होना है। स्कूलों में जेहाद और शहादत को मजहब से जोड़ कर उनकी प्रतिष्ठा की जाती है। इस्लामियत सबको पढ़ाई जाती है। गैर-मुस्लिम साथियों के लिए नमाज पढ़ना भी लाजिमी है। ये बातें हमारे यहां केंद्र में रही राजग सरकार और राज्यों की भाजपा सरकारों के शिक्षा में हिंदूवादी दखल की याद ताजा करती हैं। 'अगर देश में रहना है तो वंदे मातरम कहना है' नारा, लगता है, दोनों तरफ सिर्फ जुबान और सुर बदलता है।

पाकिस्तान की ढाई प्रतिशत हिंदू आबादी में ज्यादातर पिछड़े और गरीब हैं। इनमें सिर्फ पांच प्रतिशत हिंदू दूसरे सूबों में रहते हैं। यानी कमोबेश वे सिंध में हैं। इनमें अस्सी प्रतिशत पिछड़े हुए हैं। ये बंटवारे के वक्त खेतों में मजदूरी करते थे या पारंपरिक काम-धंधा। अब भी वे वही काम करते हैं। आबादी के साथ-जिस पर कोई बंदिश नहीं है- उनकी गरीबी बढ़ती जाती है। पाकिस्तान में हिंदुओं में राजपूत, जाट, ब्राह्मण, जैन, महेश्वरी, खत्री, चारण, लुहार, सुनार, कुम्हार, मेघवाल, भील, कोली ढेर जातियां हैं। सिंध में थर-पारकर एक ऐसा जिला है जिसमें हिंदू बहुसंख्यक हैं। पाकिस्तान की संसद (नेशनल एसेंबली) में आरक्षित सीटों से चार हिंदू सदस्य भी हैं।

बंटवारे के वक्त कितने सिंधी भारत आए, इसकी ठीक संख्या जानना मुश्किल है। लाड़काणा से भारत आए कथाकार भगवान अटलानी के मुताबिक उनकी तादाद बारह लाख से ज्यादा नहीं थी। इनमें भी बहुत से बंटवारे के काफी बाद आए, 'मोहाजिरो' के वहां पहुंचने के बाद पनपे तनाव की वजह से। जबकि सिंधी समुदाय पर शोध करने वाली रीता कोठारी कहती हैं कि बीस लाख से ज्यादा हिंदुओं ने सिंध छोड़ा। बहरहाल, उनकी इस बात पर शायद ही किसी को एतराज हो कि बंटवारे से पहले बहुसंख्यक मुस्लिम आबादी के मुकाबले एक चौथाई हिंदू बिरादरी का सिंध की अर्थव्यवस्था पर दबदबा था। आम मुसलमान वहां गरीब और पिछड़ा था। लेकिन मीर और 'वडेरा' जमींदारों का सूबे पर समाजी असर था। हिंदुओं में ज्यादातर पढ़े-लिखे 'आमिल' थे या 'भाईबंद' व्यवसायी। सूफी असर दोनों समुदायों पर था। दोनों एक-दूसरे के पीर-संतों को मानते थे। मिलकर 'भगत' सुनते थे। बाकी देश को देखते जात-पांत का असर यहां कम था।

दोनों समुदायों में टकराव सिंध की स्वायत्तता के मुद्दे पर शुरू हुआ। शुरू में हिंदू स्वायत्तता के हक में थे। लेकिन बाद में अचानक वे उस मुहिम से अलग हो गए। शायद इस भय से कि मुंबई प्रेसीडेंसी-जिसके दायरे में कई बड़े सूबे थे-से अलग होने पर हिंदू सिंध में अल्पसंख्यक बनकर हाशिए पर चले जाएंगे। ऐसा हुआ भी, जब १९३७ में सिंध स्वायत्त हो गया। कराची की इतिहासकार हमीदा खुहरो मानती हैं कि हिंदू-मुसलमानों के बीच यह ऐसी दरार थी जिसे पाटा जाना अब बहुत टेढ़ा काम था। हजारों साल 'सिंधी' पहचान निभाने वाले लोग फिर 'हिंदू' और 'मुसलमान' हो गए। सूफी परंपरा में पड़ी इस ऐतिहासिक दरार को बाद की घटनाएं गहरा करती चली गईं। फिर हुआ मस्जिद मंजिल गाह का हादसा। पंद्रहवीं शती की यह मस्जिद साधु बेला मंदिर को जाने वाले रास्ते पर पड़ती थी, पर मुद्दत से बंद थी। लोगों की मांग पर मुस्लिम लीग ने मरम्मत करवा कर इसे खुलवा दिया। इसके बाद सक्कर में दंगे भड़के। सिंध के मकबूल रहनुमा अल्लाबख्श सूमरो को अपनी हुकूमत गंवानी पड़ी। सिंध पर मुसलिम लीग काबिज हो गई। इस बीच भगत कंवराम की हत्या हुई जिससे माहौल और खराब हो गया। इसे सुधारने की गांधीजी की कोशिशें भी कारगर साबित नहीं हुईं। देर-सबेर दंगे थमे, पर हिंसा की वारदातें बढ़ती रहीं। देखते-देखते इस तरह सिंध की सदियों पुरानी सूफी संस्कृति की चूलें हिल गईं।

और ब्रह्म समाज, सुखी समाज और आर्य समाज की परंपरा वाले सिंधी-हिंदू समुदाय का एक बड़ा हिस्सा राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ की तरफ मुड़ गया। मुसलमानों के प्रति हिकारत के भाव ने राजनीति की शकल अख्तियार कर ली। रीता कोठारी ठीक कहती हैं कि बंटवारे के बाद भारत में धार्मिक फिरकापस्ती ने जो सिर उठाया, उसमें सिंध से आए कुछ हिंदू नेताओं की बड़ी भूमिका रही है।

वे सिंध की घृणा भरी स्मृतियों को शायद आज भी कुरेदते रहते हैं।